



प्रकाशनार्थ अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय: बिलासपुर

एकल पीठ: माननीय श्री मनीन्द्र मोहन श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति

रिट याचिका (सेवा) 875/2005

याचिकाकर्ता

लक्ष्मी नारायण पाण्डेय

विरुद्ध

उत्तरवादीगण

मध्य प्रदेश राज्य एवं

अन्य

रिट याचिका (सेवा) 881/2005

याचिकाकर्ता

रमेन्द्र मिश्रा

विरुद्ध

उत्तरवादीगण

मध्य प्रदेश राज्य एवं

अन्य

रिट याचिका (सेवा) 882/2005

याचिकाकर्ता

अक्षय कुमार डेविड

विरुद्ध

उत्तरवादीगण

मध्य प्रदेश राज्य एवं

अन्य

आदेश

(दिनांक 14.1.2013 को पारित)

उपस्थिति:



याचिकाकर्तागण के लिए श्री आर.के. केशरवानी, अधिवक्ता।

श्री ए.एस. कछवाहा, राज्य के लिए उप महाधिवक्ता।

तर्क सुने गए।

1. यह आदेश उपरोक्त तीन रिट याचिकाओं को निराकृत करेगा जो समान तथ्यों पर आधारित विधि के समान आधारों से उद्भूत हुए हैं।
2. इन याचिकाओं के विनिश्चय के लिए आवश्यक और सुसंगत तथ्यों का संक्षिप्त विवरण यह है कि याचिकाकर्ता सुसंगत समय पर रक्षित केंद्र, रायपुर में प्रधान आरक्षक और आरक्षक के रूप में पदस्थ और कार्यरत थे। उनके साथ अन्य आरक्षक, प्रधान आरक्षक थे जो प्रभारी थे और जिन्हें कर्तव्य सौंपा गया था। यह आरोप है कि एक अभियुक्त पुलिस की अभिरक्षा से फरार हो गया और उत्तरवादीगण के अनुसार, वे याचिकाकर्ता और अन्य पुलिस अधिकारी जो कर्तव्य पर थे, कर्तव्य की इस गंभीर कोताही और लापरवाही के लिए जिम्मेदार थे।
3. आदेश दिनांक 10.6.1992 के माध्यम से, पुलिस अधीक्षक, रायपुर ने याचिकाकर्ता लक्ष्मी नारायण पाण्डेय, रमेन्द्र मिश्रा और अक्षय कुमार के साथ-साथ कुछ और पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध संयुक्त अनुशासनात्मक कार्यवाही संस्थित की। जांच के समापन पर आदेश दिनांक 23.3.1993 (संलग्नक ए-12) के माध्यम से सेवा से बर्खास्तगी की शास्ति अधिरोपित की गई। उपरोक्त रिट याचिकाओं में से प्रत्येक याचिकाकर्ता को सेवा से बर्खास्तगी की अत्यधिक दीर्घ शास्ति से दंडित किया गया।
4. बर्खास्तगी के आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ताओं ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील प्रस्तुत की, हालांकि वे असफल रहे। अपीलें खारिज कर दी



गई। तत्पश्चात्, याचिकाकर्ताओं ने जांच की सटिकता और विधिमान्यता, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश और साथ ही अपील खारिज करने के आदेश को चुनौती देते हुए इस न्यायालय में याचिका दायर की है।

5. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि आरोप पत्र जारी करने के साथ शुरू हुई संपूर्ण विभागीय जांच म.प्र./छ.ग. सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 1966 (संक्षेप में "1966 के नियम") के नियम 18 में निहित अनिवार्य उपबंध के घोर उल्लंघन के कारण दूषित है। उन्होंने अपने तर्कों को विस्तार देते हुए तर्क दिया कि पुलिस अधीक्षक ने बिना किसी प्राधिकार के और 1966 के नियम के नियम 18 के तहत पारित सामान्य कार्यवाही के किसी आदेश के बिना, न केवल अभियोग पत्र जारी किया, अपितु विभागीय जांच की कार्यवाही भी की। उनके अनुसार, उन सभी याचिकाकर्ताओं पर सेवा से बर्खास्तगी की शास्ति अधिरोपित करने के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा विधिमान्य आदेश के अभाव में सामान्य कार्यवाही में संयुक्त जांच अनुमेय नहीं थी। उन्होंने यह आग्रह करते हुए और विस्तार से बताया कि याचिकाकर्ता- लक्ष्मी नारायण पाण्डेय प्रधान आरक्षक के रूप में पदस्थ और कार्यरत था। उसे उप पुलिस महानिरीक्षक (डीआईजी), रायपुर द्वारा पारित आदेश संलग्नक ए-2 {रिट याचिका (सेवा) क्र. 875/05} के माध्यम से प्रधान आरक्षक के रूप में पदोन्नत किया गया था। इसलिए, डीआईजी, रायपुर बर्खास्तगी की शास्ति अधिरोपित करने के लिए सक्षम थे न कि पुलिस अधीक्षक, रायपुर। उनका तर्क है कि भले ही पुलिस अधीक्षक अन्य दो याचिकाकर्ताओं यथा- रमेन्द्र मिश्रा और अक्षय कुमार डेविड, जो आरक्षक थे, पर बर्खास्तगी की शास्ति अधिरोपित करने के लिए सक्षम थे, परंतु याचिकाकर्ता- लक्ष्मी नारायण पाण्डेय पर बर्खास्तगी की शास्ति अधिरोपित करने की उनमें कोई सक्षमता नहीं थी। इसलिए, आदेश डीआईजी





या किसी अन्य प्राधिकारी, जिसके अधीन डीआईजी अधीनस्थ थे, द्वारा पारित किया जा सकता था। विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि उपरोक्त प्रावधान के उल्लंघन ने जांच को दूषित कर दिया है। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने इस न्यायालय के **घासीराम कोसारीया विरुद्ध मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य¹** के प्रकरण में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है।

शास्ति अधिरोपण के आक्षेपित आदेश को अन्य आधारों पर भी चुनौती दी गई है। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि हालांकि याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई थी, समांतर रूप से उनके विरुद्ध एक दाण्डिक प्रकरण भी संस्थित किया गया था। अंततः, सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांक 26.6.2004 के माध्यम से दाण्डिक प्रकरण का परिणाम उनकी दोषमुक्ति के रूप में हुआ, जिसमें प्रत्येक याचिकाकर्ता को दोषमुक्त कर दिया गया है। उनके अनुसार, साक्षियों के उसी समूह की परीक्षा के उपरांत एक पूर्ण विचारण के बाद दाण्डिक प्रकरण से याचिकाकर्ताओं की दोषमुक्ति, अनुशासनात्मक जांच में शास्ति के आदेश को पुनरीक्षण और वापस लेने योग्य तथा याचिकाकर्ताओं को सेवा में बहाल करने योग्य बनाती है। यह भी तर्क दिया गया है कि जांच अधिकारी की ओर से विभागीय जांच अत्यधिक पूर्वाग्रह के कारण दूषित है। नियोक्ता द्वारा कोई प्रस्तुतिकर्ता अधिकारी नियुक्त नहीं किया गया था और जांच अधिकारी ने प्रस्तुतिकर्ता अधिकारी की भूमिका छीन ली थी। उन्होंने साक्षियों का परीक्षण कराया, उनसे सूचक प्रश्न पूछे और वस्तुतः प्रस्तुतिकर्ता अधिकारी अर्थात् अभियोजक की तरह कार्य किया। जांच अधिकारी के इस आचरण ने उन्हें एक निष्पक्ष प्राधिकारी के रूप में कार्य करने के लिए अनर्ह कर दिया क्योंकि वे स्वयं के प्रकरण में स्वयं ही न्यायाधीश बन गए।

¹ 2011 (2) सी.जी.एल.जे. 147



विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ताओं को जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट पर अपना उत्तर/टिप्पणी प्रस्तुत करने का उचित और पर्याप्त अवसर प्रदान नहीं किया गया था। कारण बताओ नोटिस में सात दिनों की अल्पावधि प्रदान की गई थी, जिस पर अधिक समय की प्रार्थना की गई थी ताकि एक विशेषज्ञ की सहायता से जांच अधिकारी के प्रत्येक निष्कर्ष का खंडन करते हुए एक उचित अभ्यावेदन प्रस्तुत किया जा सके। हालांकि, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया गया और यांत्रिक रूप से, जांच रिपोर्ट को स्वीकार करते हुए, याचिकाकर्ताओं को जांच अधिकारी के निष्कर्षों के विरुद्ध उत्तर दाखिल करने के अवसर से वंचित करते हुए, शास्ति का आक्षेपित आदेश अधिरोपित कर दिया गया।

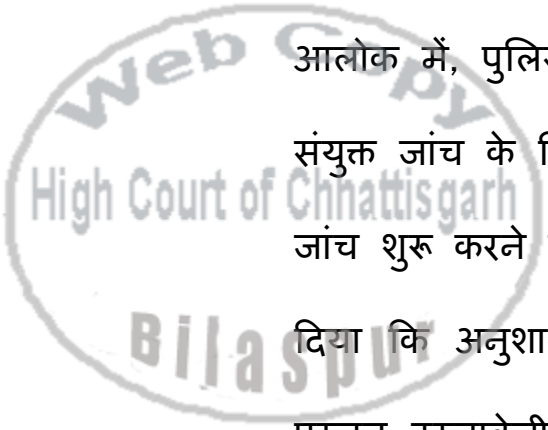
इसलिए, शास्ति का आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आधार पर अपास्त किए जाने योग्य है। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का अंतिम तर्क यह है कि अपीलीय प्राधिकारी ने याचिकाकर्ताओं द्वारा अपनी संबंधित अपीलों में उठाए गए आधारों पर अपने विवेक का प्रयोग नहीं किया। अपीलीय प्राधिकारी ने पूर्णतः बिना कोई कारण बताये आदेश पारित किया है जिसमें कुछ भी नहीं है। इसलिए, इस न्यायालय के **सोनीराम ध्रुव विरुद्ध मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य²** के प्रकरण में दिए गए निर्णय के आलोक में, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है।

6. इसके विपरीत, राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अपीलीय प्राधिकारी ने केवल अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित शास्ति के आदेश की पुष्टि की है। इसलिए, ऐसी स्थिति में जहाँ अपीलीय प्राधिकारी अनुशासनात्मक प्राधिकारी के दृष्टिकोण की पुष्टि करता है, उसे पृथक कारण

² रिट याचिका (सेवा) क्र. 1367/05, निर्णय दिनांक 05.02.2010



दर्ज करने की आवश्यकता नहीं होती है। उनके अनुसार, आदेश दर्शाता है कि विवेक का प्रयोग किया गया था, क्योंकि इसमें उल्लेख है कि जांच के संपूर्ण अभिलेख, आधारों पर विचार किया गया था। जहाँ तक 1966 के नियम के नियम 18 के कथित उल्लंघन का संबंध है, उत्तरवादीगण के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि पुलिस अधीक्षक को 1966 के नियम के साथ संलग्न अनुसूची के तहत सक्षम अनुशासनात्मक प्राधिकारी के रूप में नामित किया गया है। उन्हें न केवल आरक्षक पर, अपितु प्रधान आरक्षक पर भी सभी दंड अधिरोपित करने के लिए सक्षम अनुशासनात्मक प्राधिकारी के रूप में नामित किया गया है। इसलिए, इस तथ्य के बावजूद कि एक याचिकाकर्ता की नियुक्ति डीआईजी द्वारा की गई थी, वैधानिक नियमों में निहित प्रावधानों के आलोक में, पुलिस अधीक्षक डीआईजी या किसी अन्य उच्च प्राधिकारी द्वारा संयुक्त जांच के किसी आदेश के बिना सभी याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध संयुक्त जांच शुरू करने के लिए सक्षम थे। राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जांच रिपोर्ट और अभियोजन द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्यों पर सम्यक विचार करने के उपरांत तथा याचिकाकर्ताओं के प्रतिवाद पर पूर्ण विचार करने के बाद शास्ति का आदेश पारित किया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि जहाँ तक उचित अवसर न देने के कथित उल्लंघन का संबंध है, न्यायालय के समक्ष कोई प्रतिकूल प्रभाव न दर्शाने की स्थिति में, यह स्वतः ही शास्ति के आदेश को दूषित नहीं करता है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि विभागीय जांच में अपेक्षित प्रमाण का स्तर दाण्डिक विचारण में किसी व्यक्ति को अपराध के लिए दोषी ठहराने के लिए अपेक्षित स्तर से भिन्न होता है। जहाँ विभागीय जांच में प्रमाण का स्तर संभावनाओं की प्रबलता का होता है, वहीं दाण्डिक प्रकरणों में यह युक्तियुक्त संदेह से परे होता है। अतः, केवल इसलिए कि याचिकाकर्ताओं को





दाण्डिक आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया है, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। यह तर्क दिया गया है कि भले ही प्रस्तुतिकर्ता अधिकारी नियुक्त नहीं किया गया हो, न्यायालय के समक्ष कोई प्रतिकूल प्रभाव न दर्शाने की स्थिति में, याचिकाकर्ता किसी अनुतोष के हकदार नहीं हैं। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुतिकर्ता अधिकारी की भूमिका ग्रहण कर लिए जाने के संबंध में किए गए कथन अस्पष्ट हैं, जिनमें विशिष्ट विवरणों का अभाव है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ताओं को न केवल अभियोजन पक्ष के साक्ष्यों का प्रतिपरीक्षण करने का, अपितु अपना स्वयं का प्रतिवाद प्रस्तुत करने का भी पूर्ण अवसर प्रदान किया गया था। इसलिए, जांच अधिकारी का आचरण इस निष्कर्ष की ओर नहीं ले जाता है कि याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध उनका कोई पूर्वाग्रह था।

7. यद्यपि प्रत्येक याचिका में शास्ति के आदेश को कई आधारों पर चुनौती दी गई है, जिनका उल्लेख मैंने ऊपर किया है, मैं सबसे पहले 1966 के नियम के नियम 18 में निहित अनिवार्य उपबंध के उल्लंघन के संबंध में आधार पर विचार करूँगा।

8. यह विवादित नहीं है कि रिट याचिकाकर्ता -लक्ष्मी नारायण पाण्डेय {रिट याचिका (सेवा) क्रमांक 875/05} को प्रारंभ में आरक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था और बाद में, उसे उप पुलिस महानिरीक्षक, रायपुर, रेंज रायपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 19.11.1991 के माध्यम से प्रधान आरक्षक के रूप में पदोन्नत किया गया था। रिट याचिकाकर्ता- लक्ष्मी नारायण पाण्डेय ने अपनी याचिका की कंडिका-2 में इस आशय के विशिष्ट अभिवचन किए हैं और पदोन्नति का आदेश भी संलग्नक ए-2 के रूप में अभिलेख पर रखा गया है। उत्तरवादीगण द्वारा इस तथ्य का सारतः खंडन नहीं किया गया



है। इसलिए, इस पर विवाद नहीं किया जा सकता कि याचिकाकर्ता- लक्ष्मी नारायण पाण्डेय की नियुक्ति डीआईजी के आदेश से प्रधान आरक्षक के पद पर पदोन्नति के माध्यम से की गई थी। जहाँ तक अन्य दो याचिकाकर्ताओं का संबंध है, उन दोनों की नियुक्ति पुलिस अधीक्षक द्वारा की गई थी।

9. **घासीराम कोसारीया** (उपरोक्त) के प्रकरण में, इस न्यायालय ने पुलिस विनियमों में निहित उपबंधों की वैधानिक योजना का परीक्षण करने के उपरांत, पुलिस विभाग के आरक्षक के विरुद्ध अनुशासनात्मक जांच के प्रकरण में 1966 के नियमों की प्रयोज्यता का परीक्षण किया। इसमें निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया था:

"8. ...जहाँ तक 1966 के नियम के नियम 18 की प्रयोज्यता का संबंध है, इस न्यायालय ने **सोनीराम ध्रुव विरुद्ध मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य (रिट याचिका (सेवा) क्रमांक 1367 वर्ष 2005, दिनांक 05-02-2010 को निर्णित)** के प्रकरण में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के **कृष्णनारायण शिवप्यारे दीक्षित विरुद्ध म.प्र. राज्य एवं अन्य, 1985 एम.पी.एल.जे. 343** के निर्णय का अवलंब लेते हुए और पुलिस विनियमों के विनियम 213 में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, यह अभिनिर्धारित किया:-

10. छत्तीसगढ़ पुलिस विनियमों का खण्ड 213 यह उपबंधित करता है कि छ.ग. सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम 1966 में निहित प्रावधान पुलिस अधिकारियों के संबंध में शास्ति और अपील को विनियमित करेंगे। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा **कृष्ण नारायण शिवप्यारे दीक्षित विरुद्ध म.प्र. राज्य एवं अन्य, 1985, एम.पी.एल.जे., 343** के प्रकरण में यह





अभिनिर्धारित किया गया है कि विनियम 213 म.प्र. सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 1966 के प्रवर्तन को अपवर्जित नहीं करता है। चूँकि पुलिस विनियमों में उस रीति को विहित करने के लिए कोई विशिष्ट उपबंध नहीं किया गया था जिसमें दंड के आदेश के विरुद्ध अपील का विनिश्चय अपीलीय प्राधिकारी द्वारा किया जाएगा, अतः छ.ग. सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 1966 में निहित उपबंध जो अपीलीय प्राधिकारी द्वारा अपीलीय शक्ति के प्रयोग की पद्धति और रीति को विहित करते हैं, वे लागू होते हैं।

9. उपरोक्त सिद्धांतों को लागू करते हुए, चूँकि सामान्य कार्यवाही से संबंधित पहलू को निराकृत करने वाला कोई विशिष्ट उपबंध नहीं है, अतः 1966 के नियम के नियम 18 में निहित प्रावधान जो एक से अधिक अपचारी कर्मचारी के प्रकरण में सामान्य कार्यवाही से संबंधित हैं, वे पुलिस विभाग के अधिकारियों के संबंध में विभागीय जांच के प्रकरण में भी समान बल के साथ लागू होंगे। इसलिए, विभागीय जांच करते समय, उत्तरवादीगण विधि के तहत न केवल पुलिस विनियमों में निहित उपबंधों के अनुसार जांच करने के लिए बाध्य थे, अपितु जहाँ भी लागू हो, 1966 के नियमों के प्रावधानों के अनुपालन के लिए भी बाध्य थे।

10. 1966 के नियम का नियम 18 इस प्रकार है:

"18. सामान्य कार्यवाही। (1) जहां किसी मामले में दो या अधिक शासकीय सेवक संबंधित हों, वहां राज्यपाल या कोई अन्य प्राधिकारी जो कि ऐसे समस्त शासकीय सेवकों





पर सेवा से पदच्युत करने की शास्ति अधिरोपित करने के लिए सक्षम हों, यह निदेश देते हुए आदेश दे सकेगा कि उन समस्त शासकीय सेवकों के विरुद्ध अनुशासिक कार्यवाही सामान्य कार्यवाही में की जा सकेगी।

(2) *****

11. सामान्य कार्यवाही करने में 1966 के नियम के नियम 18 में निहित उपबंधों के उल्लंघन के परिणामों पर कई निर्णयों में विचार किया गया है और यह अब 'अनिर्णीत विषय' नहीं है। महेश कुमार श्रीकिशन तिवारी विरुद्ध मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य, 1985 एम.पी.एल.जे. 516 के प्रकरण में, विशिष्ट आदेश पारित करने की आवश्यकता, नियम 18 के तहत आवश्यक आदेश और उसके परिणामों से संबंधित विषय विचार के लिए आया। वह प्रकरण भी पुलिस विभाग के एक अधिकारी से संबंधित था। यह निर्धारित करते हुए कि 1966 के नियमों की प्रयोज्यता पूरी तरह से अपवर्जित नहीं है, प्रेमचंद्र धलपुरिया, पूर्व उप-निरीक्षक, पुलिस विरुद्ध राज्य, द्वारा आई.जी. पुलिस, भोपाल, 1970 एम.पी.एल.जे. 430 के प्रकरण का अवलंब लेते हुए, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जहाँ पुलिस विनियम मौन हैं; वहाँ 1966 के नियमों के उपबंध अधीनस्थ पुलिस स्टाफ के विरुद्ध विभागीय जांच में लागू होंगे। इस बिंदु पर कई प्रकरणों में दिए गए निर्णयों का अवलंब लेते हुए, इसे निम्नानुसार निर्धारित किया गया था:-

"23. पुलिस विनियमों में अपचारी सेवकों के विरुद्ध सामान्य कार्यवाही के लिए कोई स्पष्ट उपबंध नहीं है।





नियंत्रण एवं अपील नियमों का नियम 18 इन शब्दों में है:-

"जहाँ किसी प्रकरण में दो या अधिक शासकीय सेवक संबंधित हों, वहाँ राज्यपाल या ऐसे सभी शासकीय सेवकों पर सेवा से बर्खास्तगी की शास्ति अधिरोपित करने के लिए सक्षम कोई अन्य प्राधिकारी यह आदेश दे सकता है कि उन सभी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही एक सामान्य कार्यवाही में की जाए।"

उप पुलिस महानिरीक्षक, जो सक्षम प्राधिकारी हैं, द्वारा ऐसा कोई आदेश नहीं है। अशोक वाई. नायक विरुद्ध प्रशासक, गोवा, 1979 एसईआर.एल.जे. 84 के प्रकरण के निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जहाँ सामान्य कार्यवाही के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा कोई आदेश नहीं है, वहाँ संपूर्ण कार्यवाही अधिकारिता के बिना होने के कारण दूषित है, चाहे प्रतिकूल प्रभाव के प्रमाण का प्रश्न कुछ भी हो, जिसे विवक्षित माना जाना चाहिए। त्रिपुरा चरण विरुद्ध पश्चिम बंगाल राज्य, 1979 (1) एसईआरवी.एल.जे. 878 का निर्णय भी सुसंगत है। चूँकि यह स्पष्ट है कि नियंत्रण एवं अपील नियमों के नियम 18 का उल्लंघन किया गया है, अतः विभागीय जांच दूषित है।





24. पूर्वगामी चर्चा से यह स्पष्ट है कि वर्तमान प्रकरण में आक्षेपित आदेश न केवल नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों की पूर्ण अवहेलना में है, अपितु नियंत्रण एवं अपील नियमों के नियम 18 का भी उल्लंघन करता है।"

12. उपरोक्त दृष्टिकोण को श्यामकांत तिवारी विरुद्ध म.प्र. राज्य एवं अन्य, 1986 एम.पी.एल.जे. 37 के प्रकरण में दोहराया गया और यह अभिनिर्धारित किया गया कि :-

"14. अशोक वाई. नायक विरुद्ध प्रशासक गोवा के निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जहाँ सामान्य कार्यवाही के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा कोई आदेश नहीं है, वहाँ संपूर्ण कार्यवाही अधिकारिता के बिना होने के कारण दूषित है, चाहे प्रतिकूल प्रभाव के प्रमाण का प्रश्न कुछ भी हो, जिसे विवक्षित माना जाना चाहिए। त्रिपुरा चरण विरुद्ध पश्चिम बंगाल राज्य और मूल चंद के प्रकरण के निर्णय भी सुसंगत हैं। चूँकि यह स्पष्ट है कि नियंत्रण एवं अपील नियमों के नियम 18 का उल्लंघन किया गया है, अतः विभागीय जांच दूषित है।"

13. सरदार बलदेव सिंह विरुद्ध म.प्र. राज्य एवं अन्य, 1989 एम.पी.जे.आर. 510 के प्रकरण में भी, यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया था कि नियम 18 का उल्लंघन कार्यवाही को दूषित कर देगा जिससे दंड का आदेश अकृत और शून्य हो जाएगा।





14. उपरोक्त निर्णयों का अवलंब लेते हुए, एस. एन. सिंह विरुद्ध म.प्र. राज्य एवं अन्य, 2005 एम.पी.एल.एस.आर. 136 के प्रकरण में यह निर्धारित किया गया था कि चूँकि राज्यपाल या सक्षम प्राधिकारी जो सेवा से बर्खास्तगी की शास्ति अधिरोपित कर सकता है, की कोई पूर्व स्वीकृति कभी प्राप्त नहीं की गई थी, अतः सामान्य कार्यवाही विधिमान्य रूप से आयोजित की गई थी, ऐसा नहीं कहा जा सकता है।"

10. राज्य के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि पुलिस अधीक्षक आरक्षक के साथ-साथ प्रधान आरक्षक पर भी शास्ति अधिरोपित करने के लिए सक्षम प्राधिकारी होने के कारण, उनके द्वारा सामान्य कार्यवाही संस्थित करते हुए अभियोग पत्र जारी करना 1966 के नियम के नियम 18 के तहत सामान्य कार्यवाही के आदेश की आवश्यकता को सारतः पूरा करेगा, स्वीकार नहीं किया जा सकता है। जैसा कि ऊपर अभिनिर्धारित किया गया है, निर्विवाद रूप से, याचिकाकर्ता-लक्ष्मी नारायण पाण्डेय को डीआईजी के आदेश द्वारा प्रधान आरक्षक के पद पर पदोन्नत किया गया था। नियम 18 में उपबंधित है कि जहाँ किसी प्रकरण में दो या अधिक शासकीय सेवक संबंधित हों, राज्यपाल या ऐसे सभी शासकीय सेवकों पर सेवा से बर्खास्तगी की शास्ति अधिरोपित करने के लिए सक्षम कोई अन्य प्राधिकारी यह आदेश दे सकता है कि उन सभी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही एक सामान्य कार्यवाही में की जाए।

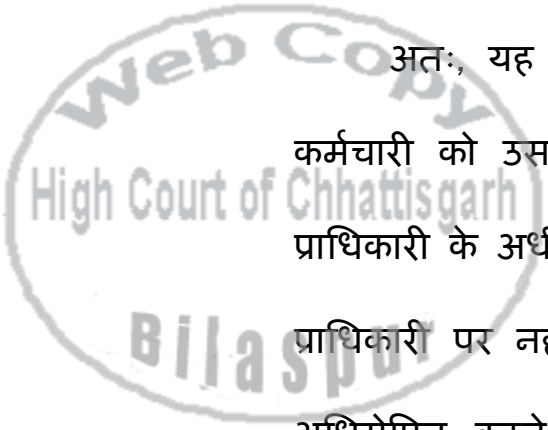
11. इसलिए, यह आदेश ऐसे सभी शासकीय सेवकों पर बर्खास्तगी की शास्ति अधिरोपित करने के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित किया जाना अपेक्षित था। इसलिए यह परीक्षण किया जाना है कि क्या विधि के तहत, पुलिस अधीक्षक याचिकाकर्ता-लक्ष्मी नारायण पाण्डेय, जो एक प्रधान आरक्षक



था, पर सेवा से बर्खास्तगी की शास्ति अधिरोपित करने के लिए सक्षम थे। लक्ष्मी नारायण पाण्डेय को डीआईजी के आदेश से पदोन्नति के माध्यम से नियुक्त किया गया था, जो पुलिस अधीक्षक के पद से उच्च रैंक का है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 (1) के तहत गारंटीकृत संवैधानिक संरक्षण इस प्रकार है।

"311. (1) किसी व्यक्ति को जो संघ की सिविल सेवा का या अखिल भारतीय सेवा का या राज्य की सिविल सेवा का सदस्य है अथवा संघ या राज्य के अधीन कोई सिविल पद धारण करता है, उसकी नियुक्ति करने वाले प्राधिकारी के अधीनस्थ किसी प्राधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जाएगा या पद से नहीं हटाया जाएगा ।

अतः, यह स्पष्ट है कि दिया गया संरक्षण यह है कि किसी शासकीय कर्मचारी को उस प्राधिकारी द्वारा बर्खास्त या हटाया नहीं जाएगा, जो उस प्राधिकारी के अधीनस्थ हो जिसने उसे नियुक्त किया था। इसलिए, आग्रह उस प्राधिकारी पर नहीं है जो बर्खास्तगी या हटाने या रैंक में कमी की शास्ति अधिरोपित करने के लिए सक्षम है, अपितु उस प्राधिकारी पर है जिसने वास्तव में नियुक्ति की है। [कृपया देखें धरम देव मेहता विरुद्ध भारत संघ (1980) 2 एससीसी 205, उत्तर प्रदेश राज्य विरुद्ध राम नरेश लाल (1970) 3 एससीसी 173 और संपूर्ण सिंह विरुद्ध पंजाब राज्य (1982) 3 एससीसी 200] इसलिए, भले ही यह मान लिया जाए कि 1966 के नियम के साथ संलग्न अनुसूची में निहित प्रावधान के बल पर, पुलिस अधीक्षक को बर्खास्तगी या हटाने की शास्ति अधिरोपित करने के लिए सक्षम प्राधिकारी के रूप में नामित किया गया है, फिर भी याचिकाकर्ता लक्ष्मी नारायण पाण्डेय को मिले गारंटीकृत संवैधानिक संरक्षण की आवश्यकता होगी कि यदि उस पर बर्खास्तगी या पदच्युति की शास्ति प्रस्तावित की जाती है, तो इसे





केवल डीआईजी या किसी अन्य उच्च प्राधिकारी द्वारा अधिरोपित किया जाना है। [कृपया देखें सोमसुंदरम एन. विरुद्ध मद्रास राज्य, एआईआर 1956 मद्रास 419, गुरुमुख सिंह विरुद्ध भारत संघ, एआईआर 1963 पंजाब 370 और बालकदास विरुद्ध सहायक सुरक्षा अधिकारी, एआईआर 1960 आंध्रप्रदेश 183]। पुलिस अधीक्षक पुलिस विनियमों की वैधानिक योजना के तहत उप पुलिस महानिरीक्षक के अधीनस्थ एक प्राधिकारी है।

12. उपरोक्त चर्चाओं के परिणाम स्वरूप, मेरा यह सुविचारित अभिमत है कि याचिकाकर्ता लक्ष्मी नारायण पाण्डेय को डीआईजी के आदेश के बिना बर्खास्त, पदच्युत या पदावनत नहीं किया जा सकता था। इसलिए, 1966 के नियम के नियम 18 के तहत सामान्य कार्यवाही का आदेश पारित करने के लिए सक्षम प्राधिकारी डीआईजी थे न कि पुलिस अधीक्षक।

अन्यथा भी, उत्तरवादीगण 1966 के नियम के नियम 18 के तहत अनुध्यात किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा पारित सामान्य कार्यवाही के किसी भी आदेश को अभिलेख पर रखने में विफल रहे हैं।

13. परिणाम यह है कि संपूर्ण जांच दूषित है और फलस्वरूप, दंड का आदेश तथा अपील में पारित आदेश अपास्त किए जाने योग्य हैं। तदनुसार, पुलिस अधीक्षक द्वारा पारित शास्ति का आदेश दिनांक 23.3.1993 और साथ ही यहाँ प्रत्येक याचिकाकर्ता के संबंध में अपील में पारित आदेश दिनांक 20.8.1993 एतद्वारा अपास्त किए जाते हैं।

14. सामान्यतः यह न्यायालय नियमों के प्रावधानों के अनुसार नए सिरे से जांच करने के लिए प्रकरण को संबंधित प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित कर देता। हालांकि, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए इस निवेदन के आलोक में कि समय के इस अंतराल पर, याचिकाकर्ता पर नए सिरे से जांच बिठाने में बहुत बड़ी कठिनाई होगी, इस पर विचार किया जाना आवश्यक है



कि वर्तमान प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों में तथा न्याय के हित में क्या आदेश पारित किए जाने चाहिए। **जी. वल्लीकुमारी विरुद्ध आंध्र एजुकेशन सोसाइटी, (2010) 2 एससीसी 497** के प्रकरण में, उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचार के लिए एक समान स्थिति उत्पन्न हुई और समय के लंबे अंतराल को ध्यान में रखते हुए विशिष्ट परिस्थितियों से निपटा गया और यह निर्धारित किया गया:-

"21. चूँकि प्रबंध समिति के अध्यक्ष द्वारा पारित दंड का आदेश वैधानिक नियमों और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के कारण दूषित है, इसलिए हमने प्रकरण को इस अधिकरण को इस निर्देश के साथ प्रेषित किया होता कि वह इस पर विचार करे कि अपीलार्थी पर अधिरोपित सेवा से हटाने की शास्ति उसके विरुद्ध पाए गए कदाचार के अनुपात में थी या नहीं अथवा प्रबंधन द्वारा की गई कार्रवाई पूरी तरह से मनमानीपूर्ण या अन्यायपूर्ण थी, परंतु इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलार्थी को 13 वर्ष से अधिक समय पहले सेवा से हटा दिया गया था, हम उस मार्ग को अपनाना उचित नहीं समझते।

22. अधीक्षक (तकनीकी) केंद्रीय उत्पाद शुल्क विरुद्ध प्रताप राय के प्रकरण में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को तकनीकी आधार पर रद्द कर दिया जाता है, तो संबंधित प्राधिकारी नया आदेश पारित करने के लिए स्वतंत्र है, परंतु साथ ही, न्यायालय ने प्रशासन को ऐसी स्वतंत्रता देने से इस आधार पर इनकार कर दिया कि आरोप तय करने के बाद से 15 वर्ष की अवधि व्यपगत हो चुकी थी।





23. भगवान लाल आर्य के प्रकरण में, इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित टिप्पणियों को दर्ज करके कुछ इसी प्रकार का समान दृष्टिकोण अपनाया गया था: (एससीसी पृ. 566, पैरा 14)

"14. इस प्रकार, वर्तमान प्रकरण ऐसा है जिसमें हम संतुष्ट हैं कि अपीलार्थी पर अधिरोपित सेवा से हटाने का दंड न केवल अधिकाधिक और असंगत है, अपितु ऐसा भी है जिसे सेवा नियमों के अनुसार अधिरोपित करना अनुमेय नहीं था। साधारणतः हमने दंड को अपास्त कर दिया होता और प्रकरण को अनुशासनात्मक प्राधिकारी के पास विधि के अनुसार और निर्णय में प्रतिपादित सिद्धांतों के अनुरूप नए सिरे से दंड का आदेश पारित करने के लिए प्रतिप्रेषित कर दिया होता। हालांकि, इससे मुकदमेबाजी की अवधि और बढ़ जाएगी। पहले से ही नष्ट हो चुके समय को ध्यान में रखते हुए, हम सेवा से हटाने के दंड को अपास्त करना उचित समझते हैं और इसके बजाय अपीलार्थी को इस शर्त के अधीन सेवा में बहाल करने का निर्देश देते हैं कि वह अवधि जिसके दौरान अपीलार्थी कर्तव्य से अनुपस्थित रहा और इस निर्णय के अनुसरण में अपीलार्थी द्वारा कर्तव्य पर वापस कार्यभार ग्रहण करने की तिथि तक गणना की गई अवधि को कर्तव्य पर बिताई गई अवधि के रूप में गणना में नहीं लिया जाएगा। अपीलार्थी इस अवधि के लिए किसी भी सेवा लाभ का हकदार नहीं होगा। इसके द्वारा अपीलार्थी को दी गई आंशिक अनुतोष की प्रकृति को देखते हुए, अब





सेवा से हटाने के दंड, जिसे अपास्त कर दिया गया है, के बदले विभागीय कार्यवाही में दंड का कोई आदेश पारित करना आवश्यक नहीं है। अपीलार्थी को इस निर्णय का लाभ लेने के लिए आज से छह सप्ताह की अवधि के भीतर कर्तव्य पर कार्यभार ग्रहण करना होगा।"

(बल दिया गया)

15. वर्तमान प्रकरण में भी लगभग वैसी ही परिस्थितियाँ विद्यमान हैं। याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध विभागीय जांच वर्ष 1992 में जारी किए गए अभियोग पत्र के माध्यम से शुरू की गई थी, जिसमें वर्ष 1993 में शास्ति अधिरोपित की गई थी। याचिकाकर्ताओं ने प्रकरण को अपील में उठाया और अंततः वर्ष 1994 में मध्य प्रदेश राज्य प्रशासनिक अधिकरण के समक्ष याचिका दायर की गई। इस प्रकार, जांच शुरू होने की तिथि से लगभग 20 वर्ष बीत चुके हैं। इसलिए, इस न्यायालय के सुविचारित अभिमत में, इस स्तर पर प्रकरण को नए सिरे से जांच के लिए प्रतिप्रेषित करना उचित नहीं होगा। याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध आरोपों की प्रकृति और सभी सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय के अभिमत में, न्याय का उद्देश्य तब पूरा होगा, यदि प्रकरण को बिना किसी और जांच के अंतिम रूप से समाप्त कर दिया जाए और याचिकाकर्ताओं को सेवा में बहाल करने का निर्देश दिया जाए। हालांकि, याचिकाकर्ता वेतन के बकाया या किसी अन्य मौद्रिक लाभ के हकदार नहीं होंगे जो उन्होंने उस अवधि के दौरान अर्जित किए होते जब वे नियोजन से बाहर थे।
16. उपरोक्त निष्कर्ष के आलोक में, मुझे याचिकाकर्ताओं द्वारा अपनी संबंधित याचिकाओं में उठाए गए अन्य आधारों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।



17. याचिका तदनुसार स्वीकार की जाती है। वाद-व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

सही/-

मनीन्द्र मोहन श्रीवास्तव

न्यायाधीश

====0000====

(Translation has been done with the help of AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयीन एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

Translated by Ratna Sahu, Adv.